Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

राजसत्ता, देह-राजनीति और स्त्री-अधिकार का अंतर्संबंध : जयशंकर प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' का इतिहासबोध, धर्मशास्त्रीय वैधता एवं प्रतिरोध-चेतना के परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक अनुशीलन

डॉ प्रियंका शर्मा
प्रोफेसर, एलबीएस कॉलेज हरदा (म. प्र.)

सारांश
जयशंकर प्रसाद का 'ध्रुवस्वामिनी' (1933) गुप्तकालीन कथावृत्त का प्रयोग करते हुए विवाह-संस्था, राजकीय उत्तरदायित्व और स्त्री की नैतिक स्वायत्तता के बीच निहित तनावों को उजागर करता है। प्रस्तुत शोधलेख का केंद्रीय प्रतिपाद्य यह है कि नाटक में ध्रुवस्वामिनी का प्रतिरोध किसी एक अनैतिक पति के विरुद्ध निजी असहमति भर नहीं है; वह उस राजनीतिक व्यवस्था की वैधता को प्रश्नांकित करता है जो राज्य की सुरक्षा के नाम पर स्त्री की देह को संधि की वस्तु बना देती है और फिर धार्मिक पदवियों द्वारा उसकी अधीनता को स्थिर करने का प्रयत्न करती है। अध्ययन में नाटक के तीनों अंकों का निकट-पाठ, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेकपूर्ण पुनर्पाठ, पात्रों के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण तथा उपलब्ध आलोचनात्मक अध्ययनों का तुलनात्मक परीक्षण किया गया है। प्रथम अंक में रामगुप्त और शिखरस्वामी के निर्णय से उजागर सत्ता की नैतिक विफलता; द्वितीय अंक में शकराज, कोमा और चन्द्रगुप्त के माध्यम से निर्मित बहुस्तरीय संघर्ष; तथा तृतीय अंक में ध्रुवस्वामिनी, मन्दाकिनी और पुरोहित की बहस से उभरती विवाह एवं धर्म की पुनर्व्याख्या अध्ययन के मुख्य आधार हैं। निष्कर्षतः नाटक स्त्री की अस्मिता को राजनीतिक न्याय की कसौटी बनाता है, यद्यपि उसके समाधान का संस्थागत स्वरूप और वीर-पुरुष के हस्तक्षेप की अनिवार्यता आलोचनात्मक पुनर्विचार की माँग करती है। इस प्रकार 'ध्रुवस्वामिनी' का पाठ स्त्री-अधिकार, सांस्कृतिक स्मृति और नैतिक राजसत्ता के परस्पर संबंध को समझने की महत्वपूर्ण सम्भावना प्रदान करता है।

बीज शब्द : जयशंकर प्रसाद; ध्रुवस्वामिनी; स्त्री-अस्मिता; राजसत्ता; देह-राजनीति; धर्मशास्त्र; प्रतिरोध-चेतना; ऐतिहासिक नाटक।

1. प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी नाट्य-साहित्य में जयशंकर प्रसाद का महत्व केवल ऐतिहासिक विषयों के चयन के कारण नहीं है। उनकी रचनाओं में इतिहास ऐसे रचनात्मक प्रदेश के रूप में उपस्थित होता है जहाँ वर्तमान के वैचारिक प्रश्नों को अतीत की घटनाओं, व्यक्तियों और संस्थाओं के सहारे परखा जा सकता है। 'ध्रुवस्वामिनी' इसी विशेषता का सघन उदाहरण है। गुप्त-साम्राज्य की राजनीतिक परिस्थिति से आरम्भ होने वाला इसका कथानक शीघ्र ही एक कठिन नैतिक प्रश्न तक पहुँचता है—क्या राज्य और शासक की

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

रक्षा के लिए किसी स्त्री की इच्छा, सम्मान तथा शरीर को विनिमय की वस्तु मान लेना वैध हो सकता है? यह प्रश्न नाटक की सभी प्रमुख घटनाओं को एक सूत्र में बाँध देता है (प्रसाद, 1933, प्रथम अंक)।

प्रसाद की नायिका पारंपरिक अर्थ में राजमहल की पीड़ित स्त्री भर नहीं है। राजसत्ता द्वारा प्रदत्त 'महादेवी' का संबोधन उसे सुरक्षा, निर्णय का अधिकार अथवा वास्तविक सम्मान नहीं दिला पाता। पदवी और अनुभव का यही विरोध नाटक के आलोचनात्मक अर्थ को गहरा करता है। एक ओर सत्ता उसे राज्य की प्रतिष्ठा का प्रतीक कहती है, दूसरी ओर संकट के क्षण में उसी सत्ता के लिए उसे शत्रु को सौंप देना संभव हो जाता है। इसलिए स्त्री-अस्मिता की समस्या का विश्लेषण अकेले घरेलू संबंधों तक सीमित रखने से नाटक की राजनीतिक संरचना अस्पष्ट रह जाती है।

इस अध्ययन में 'देह-राजनीति' का आशय किसी आधुनिक सिद्धांत को यांत्रिक रूप से नाटक पर आरोपित करना नहीं है, बल्कि उस प्रक्रिया की पहचान करना है जिसमें स्त्री का शरीर सैन्य-संधि, वंश-मर्यादा और पुरुष-प्रतिष्ठा की भाषा में नियंत्रित किया जाता है। इसी प्रकार 'वैधता' का अर्थ केवल सिंहासन पर विधिवत बैठना नहीं, बल्कि उस नैतिक अधिकार से है जिसके आधार पर शासन स्वयं को न्यायपूर्ण ठहराता है। नाटक के भीतर रामगुप्त का पद बना रहता है, किंतु उसके निर्णयों की नैतिक विश्वसनीयता क्रमशः क्षीण होती जाती है।

पूर्ववर्ती अध्ययनों में इस नाटक की नारी-जागरण, स्त्री-सशक्तिकरण और पुनर्विवाह संबंधी व्याख्याएँ महत्वपूर्ण रही हैं (यादव, 2018; मीनाक्षी, 2019; शर्मा, 2021)। प्रस्तुत लेख इन निष्कर्षों से संवाद करते हुए यह देखता है कि ध्रुवस्वामिनी का अधिकार-प्रश्न किस तरह सम्राट, मंत्री, सैनिक, पुरोहित और परिषद् की परस्पर उलझी शक्तियों को प्रभावित करता है। उद्देश्य किसी पात्र को पूर्णतः आधुनिक अथवा पूर्णतः रूढ़िवादी घोषित करना नहीं, बल्कि नाटकीय स्थितियों में उत्पन्न अंतर्विरोधों की पहचान करना है।

2. साहित्यिक पृष्ठभूमि और कृति की उपलब्धता

'ध्रुवस्वामिनी' का प्रथम प्रकाशन 1933 में हुआ था। 'प्रसाद वाङ्मय' के द्वितीय खण्ड की उपलब्ध विषय-सूची इस प्रकाशन-वर्ष की पुष्टि करती है। कृति तीन अंकों में व्यवस्थित है। इसका पाठ विकिस्रोत पर अंकवार निःशुल्क उपलब्ध है, जिससे पात्रों के संवाद, मंच-निर्देश और घटनाक्रम को सीधे मूल पाठ के आधार पर पढ़ा जा सकता है (प्रसाद, 1933, प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अंक)। इस शोधलेख में उद्धरणों का संदर्भ अंक के अनुसार दिया गया है; विभिन्न मुद्रित संस्करणों की असमान पृष्ठ-संख्या को एक मानकर कोई कृत्रिम पृष्ठ-संदर्भ नहीं बनाया गया है।

गुप्तकालीन पृष्ठभूमि नाटक को ऐतिहासिक आभा प्रदान करती है, किंतु नाटक स्वयं इतिहास-ग्रंथ नहीं है। प्रसाद की भूमिका में रामगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी से संबद्ध परंपराओं, विशाखदत्त के 'देवीचन्द्रगुप्त' के उपलब्ध अंशों तथा धर्मशास्त्रीय प्रमाणों का उल्लेख आता है। इन दावों को लेखक की ऐतिहासिक तर्क-प्रक्रिया के रूप में पढ़ना चाहिए, न कि प्रत्येक घटना की निर्विवाद पुरातात्त्विक पुष्टि के रूप में। इतिहास और कल्पना के इस अंतर को बनाए रखना आलोचनात्मक अध्ययन की पहली शर्त है (प्रसाद, 1933, भूमिका)।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की अध्ययन-सामग्री में 'ध्रुवस्वामिनी' को प्रसाद की अपेक्षाकृत संक्षिप्त, मंचीय दृष्टि से सघन और नायिका-प्रधान रचना के रूप में विवेचित किया गया है। यहाँ राजनीतिक संकट के समानान्तर नारी-अधिकार की केंद्रीयता पर ध्यान दिलाया गया है (उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, तिथि अज्ञात)। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की अध्ययन-इकाई भी नाटक के वाचन और व्याख्या को स्वतंत्र विषय मानती है (पालीवाल, 2018)। इन शैक्षिक स्रोतों से यह स्पष्ट होता है कि रचना के मूल्यांकन में कथानक-सार से आगे बढ़कर नाटकीय विधान, चरित्र-विकास और मूल्य-संघर्ष पर विचार करना आवश्यक है।

3. पूर्ववर्ती साहित्य का समीक्षात्मक अवलोकन

यादव (2018) ने 'ध्रुवस्वामिनी' को स्त्री-जागरण की दृष्टि से पढ़ते हुए दिखाया कि नाटक की नायिका पुरुष की स्वामित्ववादी प्रवृत्ति का खुलकर प्रतिकार करती है। अध्ययन में राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति की समानांतर आकांक्षाओं को महत्व दिया गया है। यह व्याख्या पाठ के स्वाधीनता-संबंधी अर्थ खोलती है; तथापि राजनीतिक निर्णय को वैध ठहराने वाले मंत्री तथा धर्मशास्त्रीय निर्णय को बदलने वाले पुरोहित की संस्थागत भूमिकाओं पर और अधिक विस्तार की सम्भावना बनी रहती है।

मीनाक्षी (2019) ने नाटक के नामकरण तथा स्त्री को उपहार की वस्तु बनाए जाने के विरोध को स्त्री-सशक्तिकरण से जोड़ा है। यह संकेत विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि शीर्षक में नायिका को केंद्र में लाना स्वयं एक नाटकीय चयन है। अनुराधा और पाण्डेय (2019) ने ध्रुवस्वामिनी के साथ कोमा और मन्दाकिनी को भी स्त्री-चेतना की वाहक माना है। इस अध्ययन से यह समझ मजबूत होती है कि प्रसाद का स्त्री-पक्ष एकल नायिका तक सीमित नहीं; अलग सामाजिक स्थानों पर स्थित स्त्रियाँ भी समान अन्याय के भिन्न रूपों को पहचानती हैं।

शर्मा (2021) ने स्त्री-विमर्श के अंतर्गत अस्मिता, सम्मान और स्वाभिमान को रचना की केंद्रीय चिंताओं के रूप में रेखांकित किया। सिंह (2023) ने विवाहित स्त्री के आत्मसम्मान और धार्मिक पृष्ठभूमि में संबंध-विच्छेद की समस्या को पढ़ा। चतुर्वेदी (2025) का अध्ययन ध्रुवस्वामिनी के अतिरिक्त स्त्री-पात्रों के गुण, प्रतिरोध और सामाजिक प्रतिष्ठा पर केंद्रित है। इन अध्ययनों का संयुक्त योगदान यह है कि नाटक में स्त्री को केवल करुणा की पात्र मानना पर्याप्त नहीं; उसका न्याय-बोध और निर्णयात्मक क्षमता भी साहित्यिक विश्लेषण की विषयवस्तु है।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों को व्यापक संदर्भ में पढ़ने के लिए सिंह और जैन (2025) ने ऐतिहासिक नाट्यकृतियों में राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक स्मृति का महत्व प्रतिपादित किया है। इस संदर्भ से 'ध्रुवस्वामिनी' के इतिहासबोध को समझने में सहायता मिलती है; किंतु राष्ट्रगौरव की व्याख्या तभी सार्थक है जब उसे नाटक में उपस्थित अन्याय की आलोचना के साथ रखा जाए। केवल राज्य के गौरव का अभिनंदन करने से उस स्त्री की स्थिति अदृश्य हो जाएगी जिसे उसी राज्य के नाम पर बलिदान के लिए प्रस्तुत किया गया था।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

समीक्षित साहित्य में स्त्री-अधिकार, नारी-मुक्ति, ऐतिहासिकता और मंचीय विधान पर सार्थक चर्चाएँ उपलब्ध हैं। इस लेख का विशिष्ट प्रश्न उन प्रवृत्तियों के बीच अंतर्संबंध को व्यवस्थित रूप से पढ़ना है: कैसे स्त्री को वस्तु बनाने वाला राजनीतिक निर्णय राजा की नैतिक वैधता को समाप्त करता है; कैसे नायिका का प्रतिरोध धर्मशास्त्रीय पुनर्विचार को प्रेरित करता है; और कैसे परिषद् की सामूहिक सहमति निजी न्याय को सार्वजनिक राजनीतिक परिवर्तन में बदल देती है। यहाँ प्रस्तुत 'शोध-अंतर' उपलब्ध चयनित अध्ययनों के दायरे में पहचानी गई विश्लेषणात्मक सम्भावना है; इसे सभी प्रकाशित शोधों की पूर्ण समीक्षा का दावा नहीं माना गया है।

4. शोध-समस्या, उद्देश्य एवं अध्ययन की परिकल्पित दिशा

शोध-समस्या का मूल प्रश्न है: 'ध्रुवस्वामिनी' में स्त्री के आत्मनिर्णय की माँग राजसत्ता की नैतिक वैधता और विवाह संबंधी धर्मशास्त्रीय व्याख्याओं को किस प्रकार पुनर्गठित करती है? इस प्रश्न से जुड़े उपप्रश्न हैं—रामगुप्त की राजकीय सत्ता नैतिक रूप से कब और क्यों संदिग्ध होती है; शिखरस्वामी की संधि-नीति में स्त्री का स्थान क्या है; ध्रुवस्वामिनी के प्रतिरोध को मन्दाकिनी किस तरह सार्वजनिक तर्क में बदलती है; तथा पुरोहित की भूमिका धर्म की जड़ता या उसके पुनर्व्याख्यायित रूप में किस सीमा तक समझी जा सकती है।

अध्ययन के उद्देश्य चार हैं: प्रथम, नाटक की राजनीतिक घटनाओं और स्त्री-अस्मिता के पारस्परिक संबंध की व्याख्या करना; द्वितीय, मुख्य स्त्री-पात्रों की भिन्न प्रतिरोध-रणनीतियों का पाठ-आधारित विश्लेषण करना; तृतीय, वैवाहिक बंधन, धार्मिक प्राधिकार और सार्वजनिक न्याय के नाटकीय संबंधों की पड़ताल करना; तथा चतुर्थ, ऐतिहासिक कल्पना और समकालीन मूल्य-चिंतन के बीच रचनात्मक तनाव को चिह्नित करना। ये उद्देश्य मात्र कथासार प्रस्तुत करने के बजाय कथन, क्रिया और सत्ता-संबंधों की अर्थवत्ता समझने से जुड़े हैं।

कार्यशील धारणा यह है कि नाटक स्त्री को राजनीतिक प्रतिष्ठा की निष्क्रिय प्रतीक-वस्तु से विचारशील न्याय-दावेदार की स्थिति तक ले जाता है। इसके साथ एक आलोचनात्मक संभावना भी रखी गई है: क्या नायिका की मुक्ति अन्ततः चन्द्रगुप्त की वीरता, पुरोहित की व्याख्या और परिषद् की स्वीकृति पर इतनी निर्भर रह जाती है कि स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न पूरी तरह स्वाधीन नहीं बन पाता? इस द्वंद्व की जाँच लेख को एकांगी प्रशंसात्मक निष्कर्ष से बचाती है।

5. शोध-पद्धति एवं पाठ-निर्धारण

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक, व्याख्यात्मक तथा पाठ-केंद्रित है। मूल स्रोत जयशंकर प्रसाद का 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक है, जिसका प्रथम, द्वितीय और तृतीय अंक अलग-अलग पढ़ा गया है। सहायक स्रोतों में विश्वविद्यालयीय अध्ययन-सामग्री और प्रकाशित आलोचनात्मक लेख सम्मिलित हैं। नाटक के संवादों, पात्रों की क्रियाओं, मंच-निर्देशों तथा प्रसाद की भूमिका के आधार पर कथानक का निकट-पाठ किया गया है। इस पद्धति में किसी सर्वेक्षण, साक्षात्कार अथवा संख्यात्मक प्रतिदर्श का दावा नहीं है।

विश्लेषण के लिए पाँच संकल्पनात्मक सूत्र अपनाए गए हैं—शरीर के राजनीतिक विनिमय का विरोध; सत्ता और न्याय का भेद; विवाह की नैतिक शर्तें; स्त्री-पात्रों के बीच वैचारिक संवाद; तथा ऐतिहासिक

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

नाटक की सार्वजनिक आलोचनात्मक क्षमता। इस प्रयोजन के लिए 'देह-राजनीति', 'स्वायत्तता' और 'वैधता' विश्लेषणात्मक पद हैं। इन्हें आधुनिक कानून की अपरिवर्तित भाषा की तरह प्राचीन ऐतिहासिक परिवेश में नहीं आरोपित किया गया है।

पाठ के साक्ष्य प्रस्तुत करते समय संवाद की वक्ता-स्थिति और अंक का उल्लेख किया गया है। जहाँ किसी विशिष्ट कथन को उद्धृत किया गया है, वहाँ उसकी संक्षिप्तता बनाए रखी गई है; अन्य स्थलों पर घटनाओं और संवादों का आलोचनात्मक सार ग्रहण किया गया है। द्वितीयक आलोचकों के निष्कर्षों को स्वतंत्र मूल-पाठ प्रमाण का विकल्प नहीं बनाया गया, बल्कि संवाद के लिए उपयोग किया गया है।

6. इतिहासबोध : साम्राज्य की स्मृति और नैतिक प्रश्न

'ध्रुवस्वामिनी' का आरम्भ उस ऐतिहासिक संसार से होता है जिसे भारतीय सांस्कृतिक स्मृति में गुप्तकालीन शक्ति और वैभव के रूप में देखा जाता रहा है। परंतु प्रसाद इस गौरव को बिना किसी आलोचनात्मक प्रश्न के स्वीकार नहीं करते। नाटक में शक्ति का बाहरी वैभव तभी सार्थक है जब उसके भीतर साहस, उत्तरदायित्व और न्याय हों। रामगुप्त के राज्य में औपचारिक सम्राट, अमात्य और राजपरिवार की व्यवस्था उपस्थित है, किंतु कठिन परिस्थिति में इन्हीं पदों के वास्तविक नैतिक अर्थ टूटते दिखाई देते हैं। साम्राज्य के गौरव और सत्ता की क्षुद्रता में यह विरोध नाटक का आंतरिक ऐतिहासिक व्यंग्य बनता है।

ऐतिहासिक कथावस्तु के संबंध में लेखक की भूमिका विशेष ध्यान देने योग्य है। प्रसाद प्राचीन साहित्यिक संकेतों और उपलब्ध ऐतिहासिक प्रतिपादनों के सहारे अपनी कथा की सम्भाव्यता निर्मित करते हैं। यहाँ 'ऐतिहासिक सत्य' और 'काव्यात्मक सम्भावना' को अलग रखना चाहिए। नाटक ऐतिहासिक पात्रों की अंतःप्रेरणाओं का प्रत्यक्ष अभिलेख नहीं, बल्कि अतीत के माध्यम से न्याय की कल्पना है। इस भेद को रेखांकित करने से किसी पात्र की नाटकीय प्रेरणा को अनिवार्य ऐतिहासिक तथ्य मानने की त्रुटि से बचा जा सकता है (प्रसाद, 1933, भूमिका)।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पाठ्यसामग्री में नाटक के ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्रों का सहअस्तित्व स्वीकार करते हुए इसकी सघन नाट्य-रचना पर चर्चा की गई है। इस दृष्टि से 'ध्रुवस्वामिनी' इतिहास को सजावटी पृष्ठभूमि की तरह नहीं, बल्कि मूल्य-निर्णय की भूमि की तरह इस्तेमाल करता है। जो प्रश्न गुप्त-राजनीति में उठता है, वह किसी भी ऐसी शासन-व्यवस्था से पूछा जा सकता है जिसमें सामूहिक हित के नाम पर किसी व्यक्ति की गरिमा को बलि चढ़ाने की प्रवृत्ति हो (उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, तिथि अज्ञात)।

इतिहास के इस प्रयोग की एक सीमा भी है। पाठक को राष्ट्रीय गौरव के भावावेग में बहकर नायक और खलनायक का सरल विभाजन नहीं बना लेना चाहिए। रामगुप्त की दुर्बलता, चन्द्रगुप्त का साहस, मन्दाकिनी की नैतिक निर्भीकता और पुरोहित की पुनर्व्याख्या मिलकर जिस राजनीतिक समाधान की रचना करते हैं, उसकी सामाजिक जटिलता इतिहास से अधिक नाटक की वैचारिक योजना से संबद्ध है। फलतः यह कृति ऐतिहासिक पुनरुत्पादन की नहीं, इतिहास के नैतिक पुनर्पाठ की रचना है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

7. रामगुप्त : औपचारिक प्रभुत्व और नैतिक वैधता का विघटन

नाटक के प्रथम अंक में रामगुप्त राजसत्ता के शीर्ष पर है। फिर भी उसके व्यक्तित्व को प्रसाद जिन नाटकीय संकेतों से निर्मित करते हैं, वे उसके पद और आचरण में विसंगति उजागर करते हैं। मद्य, मनोरंजन और संकट से पलायन की प्रवृत्तियाँ उसे उस राजनीतिक उत्तरदायित्व से दूर रखती हैं जिसकी अपेक्षा सम्राट से की जाती है। जब शकराज की ओर से ध्रुवस्वामिनी को सौंपने का प्रस्ताव आता है, तब रामगुप्त की प्रतिक्रिया साम्राज्य की रक्षा के प्रश्न को राजधर्म के विवेक से नहीं, निजी प्राणरक्षा के भय से देखती है।

इस प्रसंग में स्त्री के साथ उसका वैवाहिक संबंध शासकीय निर्णय के अधीन हो जाता है। विवाह जिस पारस्परिक संरक्षण और जिम्मेदारी पर आधारित समझा जाता है, उसका निर्वाह करने से सम्राट पीछे हटता है। ध्रुवस्वामिनी उसे अग्नि-वेदी की प्रतिज्ञा का स्मरण कराती है, किंतु वह प्रतिज्ञा की गंभीरता को टाल देता है (प्रसाद, 1933, प्रथम अंक)। यहाँ पति और राजा की भूमिकाएँ एक दूसरे को नियंत्रित करने के बजाय एक दूसरे की असफलता को उघाड़ती हैं।

रामगुप्त की नैतिक विफलता को केवल व्यक्तिगत कायरता कहना पर्याप्त नहीं होगा। प्रश्न उस राजनीतिक धारणा का है जिसमें शासन का अस्तित्व सर्वोच्च मूल्य बन जाता है, जबकि उसके अधीन मनुष्य का सम्मान विनिमेय वस्तु माना जाता है। राजकीय संकट की घड़ी में मंत्री की संधि-नीति और राजा की स्वीकृति मिलकर स्त्री को राज्य के संरक्षण की सीमा से बाहर कर देते हैं। इसीलिए सत्ता बचाने का प्रयत्न सत्ता की नैतिक आधारभूमि को ही नष्ट कर देता है।

तृतीय अंक में परिषद् के सामने जब रामगुप्त के आचरण का लेखा प्रस्तुत होता है, तब उसकी वैधता वंशाधिकार या राजकीय संबोधन के आधार पर नहीं बच पाती। वहाँ राजनीतिक नेतृत्व की कसौटी न्याय, साहस और सार्वजनिक भरोसा बन जाती है। स्त्री के साथ अन्याय की घटना इस संकट को सार्वजनिक रूप से पहचानने का निर्णायक अवसर है। इस बिंदु पर नाटक निजी अपमान से राजनीतिक पुनर्संयोजन की ओर बढ़ता है (प्रसाद, 1933, तृतीय अंक)।

8. शिखरस्वामी की संधि-नीति और स्त्री का राजनीतिक वस्तुकरण

प्रथम अंक में शिखरस्वामी राजनीतिक विवेक के नाम पर जिस संधि का समर्थन करता है, वह नाटक की देह-राजनीति को सबसे स्पष्ट रूप देता है। शकराज केवल धन, क्षेत्र या सैन्य रियायत की माँग नहीं करता; उसकी माँग रानी तथा अन्य स्त्रियों को अपने पक्ष में प्राप्त करने की है। इस कथानक-स्थिति में स्त्री स्वयं वार्ताकार नहीं, बल्कि पुरुष-सत्ताओं के बीच विनिमय की प्रस्तावित वस्तु बनती है। उसका व्यक्तित्व राजनय के अनुबंध में अनुपस्थित है, जबकि उसका शरीर उस अनुबंध का केंद्र है (प्रसाद, 1933, प्रथम अंक)।

शिखरस्वामी की दृष्टि में संधि की पूर्णता औपचारिक शर्तों के पालन से निर्धारित होती है। किन्तु यह औपचारिकता नैतिक प्रश्न को ढक देती है: क्या किसी तीसरे व्यक्ति की असहमति के बावजूद उसे सौंपना राजनीतिक व्यवहार माना जा सकता है? नाटक यह प्रश्न आधुनिक अधिकार-भाषा में नहीं रखता, लेकिन

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

ध्रुवस्वामिनी के प्रतिरोध के माध्यम से उसकी निहित अनैतिकता उजागर करता है। 'राष्ट्र-रक्षा' और 'रानी की बलि' के बीच नायिका द्वारा स्थापित संबंध स्वयं राज्य-भाषा का आलोचनात्मक पुनर्पाठ है।

इस घटना की तुलना बलिदान की पारंपरिक महिमा से भी की जा सकती है। युद्ध में स्वेच्छा से जोखिम उठाना और बिना सहमति किसी व्यक्ति को शत्रु को सौंप देना समान नैतिक क्रियाएँ नहीं हैं। संधि का प्रस्ताव इस अंतर को मिटाकर समर्पण को राज्य-कर्तव्य बताता है। ध्रुवस्वामिनी इस तर्क को अस्वीकार करती है, इसलिए उसकी असहमति केवल व्यक्तिगत जीवित रहने की इच्छा नहीं, बल्कि स्वेच्छा और बलपूर्वक बलिदान के बीच आवश्यक भेद की पुनर्स्थापना है।

शिखरस्वामी का चरित्र सत्ता को संचालित करने वाली उस नौकरशाही बुद्धि का भी रूपक बनता है जो साधन की नैतिकता पर प्रश्न किए बिना लक्ष्य की रक्षा का दावा करती है। नाटक के अंत में यही तर्क उसके विरुद्ध खड़ा होता है। प्रशासनिक कौशल, जब मनुष्य की गरिमा से पृथक हो जाए, तो सत्ता की प्रभावशीलता को बढ़ाते हुए भी उसकी न्यायिक विश्वसनीयता को घटा देता है।

9. ध्रुवस्वामिनी की आत्म-स्वीकृति : वस्तु से निर्णयकर्ता तक

ध्रुवस्वामिनी के प्रतिरोध का निर्णायक क्षण वह है जब वह बाहरी संरक्षण की विफलता पहचानकर कहती है—"मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी!" (प्रसाद, 1933, प्रथम अंक)। यह संक्षिप्त कथन एक बड़े नाटकीय बदलाव का चिह्न है। रानी अब केवल सम्राट की सुरक्षा-प्रतीक्षा में नहीं रहती; वह निर्णय की जिम्मेदारी अपनी ओर खींच लेती है। उसके हाथ में कृपाणी आने की मंचीय क्रिया संवाद को शारीरिक और दृश्य प्रभाव देती है।

इस आत्मस्वीकृति के साथ ध्रुवस्वामिनी अपने वस्तुकरण का प्रतिवाद भी करती है। उसके लिए जीवित देह किसी निर्जीव संपदा की तरह हस्तांतरित नहीं की जा सकती। नाटक के प्रथम अंक में उसका आत्मसम्मान इसी भेद पर आधारित है—एक ओर राजसत्ता की भौतिक संपदा का विनिमय, दूसरी ओर एक चेतन व्यक्ति की इच्छाशक्ति। ध्रुवस्वामिनी को कमजोर, करुणामयी अथवा 'आदर्श नारी' के रूढ़ रूप में समेटना इस निर्णायक वैचारिक परिवर्तन को कम कर देगा।

फिर भी उसका प्रतिरोध निर्भयता का एकरेखीय आख्यान नहीं है। वह संकट, भय, असुरक्षा और भावनात्मक द्वंद्व से गुजरती है। यही जटिलता पात्र को अधिक विश्वसनीय बनाती है। स्वयं की रक्षा करने की घोषणा का आशय यह नहीं कि उसके आसपास की सत्ता-व्यवस्था तुरंत बदल जाती है। संघर्ष का महत्त्व इस बात में है कि पीड़ित पात्र अपनी पीड़ा को सार्वजनिक नैतिक दावा बनाने की दिशा में बढ़ता है।

शर्मा (2021) ने नाटक में सम्मान और स्वाभिमान के प्रश्न को रेखांकित किया है। इस अध्ययन की दिशा में आगे बढ़ते हुए कहा जा सकता है कि ध्रुवस्वामिनी का आत्मसम्मान सिर्फ आंतरिक आत्मछवि नहीं, संबंधों को न्यायपूर्ण बनाने की मांग है। वह चाहती है कि राज्य, विवाह और धर्म के पद उसके विरुद्ध इस्तेमाल न किए जाएँ। उसकी प्रतिरोध-चेतना का वास्तविक लक्ष्य किसी पुरुष की जगह दूसरे पुरुष का आश्रय भर प्राप्त करना नहीं, बल्कि अपने प्रति व्यवहार की नैतिक शर्तें बदलना है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

10. 'महादेवी' पदवी का विरोधाभास : प्रतीकात्मक सम्मान और वास्तविक अपमान

नाटक की एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक युक्ति है—ध्रुवस्वामिनी को बार-बार 'महादेवी' कहा जाना। यह संबोधन वैभव, शक्ति और ऊँचे सामाजिक स्थान का संकेत देता है; पर जिस स्त्री को राजनीतिक सन्धि के अंतर्गत शत्रु के पास भेजा जा सकता है, उसके लिए पदवी सम्मान की गारंटी नहीं रहती। तृतीय अंक में नायिका के प्रश्न इसी अंतर्विरोध को तीव्र कर देते हैं। वह मानो पूछती है कि जब राजसत्ता ने उसके मनुष्य होने की गरिमा नहीं मानी, तब सम्मानसूचक विशेषण का क्या अर्थ बचता है।

पदवी के परित्याग का क्षण इसीलिए महत्वपूर्ण है। नायिका कहती है—"मनुष्य की दी हुई उपाधि मैं लौटा देती हूँ।" (प्रसाद, 1933, तृतीय अंक)। यहाँ निजी आक्रोश सार्वजनिक दार्शनिक कथन बन जाता है। पदवियों का मूल्य तभी है जब वे व्यक्ति के वास्तविक अधिकारों और मानवीय प्रतिष्ठा से मेल खाएँ। बिना व्यवहारिक न्याय के सम्मानसूचक भाषा एक आडंबर में बदल सकती है।

प्रसाद की नाट्य-योजना में यह विरोध भारतीय सामाजिक संरचनाओं के व्यापक अनुभव से जुड़ता है। अनेक बार स्त्री को गौरव, मर्यादा और पूजा की ऊँची भाषा दी जाती है, किंतु उसके निर्णय-अधिकार सीमित रहते हैं। यह आलोचनात्मक समानता पाठ की आधुनिक प्रासंगिकता बताती है; फिर भी इसे नाटक का शाब्दिक सामाजिक सर्वेक्षण समझना अनुचित होगा। साहित्यिक परिस्थिति अपने भीतर अर्थ का ऐसा संकेत देती है जिसकी सामाजिक तुलना सावधानी से की जा सकती है।

11. चन्द्रगुप्त : वीरता, राजनीतिक उत्तरदायित्व और मुक्ति का द्वंद्व

चन्द्रगुप्त नाटक में रामगुप्त के विपरीत साहस, उत्तरदायित्व और सक्रिय हस्तक्षेप का पात्र है। वह शत्रु-दुर्ग में प्रवेश की योजना से राजनीतिक संकट को नया रूप देता है। किंतु इस वीरता का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते समय नायिका की भूमिका को गौण नहीं करना चाहिए। द्वितीय अंक में छद्मवेश, संकेत, संकट और साहस की घटनाएँ चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी की साझा भागीदारी से आगे बढ़ती हैं। शक-दुर्ग की निर्णायक घटना को केवल नायक की एकाकी विजय कहना मूल पाठ की नाटकीय जटिलता का सरलीकरण होगा (प्रसाद, 1933, द्वितीय अंक)।

चन्द्रगुप्त का राजनीतिक दावा भी केवल किसी स्त्री की रक्षा करने वाले प्रेमी का दावा नहीं है। तृतीय अंक में वह अपने पिता समुद्रगुप्त द्वारा निर्धारित उत्तराधिकार और रामगुप्त की राजनीतिक छलपूर्ण स्थिति को सामने रखता है। इससे नाटक का संघर्ष व्यक्तिगत संबंधों की सीमा से बाहर जाकर उत्तराधिकार और शासन की वैधता तक पहुँचता है। ध्रुवस्वामिनी का प्रश्न इस विवाद में नैतिक निर्णायकता जोड़ता है, पर वह स्वयं सिंहासन का अधिकार पाने का सरल साधन नहीं बन जाती।

यहाँ आलोचनात्मक प्रश्न शेष रहता है कि क्या नायिका की मुक्ति के लिए वीर-पुरुष की निर्णायक भूमिका अनिवार्य बनाना उसकी स्वतंत्रता को सीमित करता है। नाटक इस प्रश्न का सरल उत्तर नहीं देता। एक ओर ध्रुवस्वामिनी स्वयं को वस्तु मानने से इनकार करती है और निर्णय की भाषा बोलती है; दूसरी ओर सैन्य संघर्ष और राजकीय पुनर्संयोजन चन्द्रगुप्त की सामर्थ्य के सहारे पूरे होते हैं। इस अंतर्विरोध को पहचानना प्रसाद की रचना की शक्ति और सीमा दोनों का सम्मान करना है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

विवाह और राजसत्ता का पुनर्गठन यदि नाटक का समाधान है, तो यह भी ध्यान रखना होगा कि व्यक्तिगत गरिमा के प्रश्न को नाटकीय व्यवस्था सामूहिक निर्णय से मान्यता दिलाती है। चन्द्रगुप्त की सफलता का महत्त्व तभी है जब उसे नायिका के अधिकार-प्रतिपादन और परिषद् के न्यायिक पुनर्विचार के साथ पढ़ा जाए।

12. मन्दाकिनी : प्रतिरोध की वैचारिक तथा सार्वजनिक मध्यस्थ

मन्दाकिनी को प्रायः सहायक पात्र के रूप में देखा जाता है, किंतु नाटक के राजनीतिक अर्थ को समझने के लिए उसकी भूमिका केंद्रीय है। प्रथम अंक में वह सत्ता के भयभीत और अवसरवादी व्यवहार को पहचानती है तथा न्याय के कमजोर पक्ष का साथ देने का संकल्प करती है। यह निर्णय उसे केवल ध्रुवस्वामिनी की सहानुभूतिशील संबंधी नहीं, सत्ता-व्यवस्था की नैतिक आलोचक बनाता है। वह प्रसंगों को जोड़ती, अन्याय को नाम देती और चन्द्रगुप्त तक आवश्यक सूचनाएँ पहुँचाने की जिम्मेदारी लेती है। मन्दाकिनी की विशेषता यह है कि उसका प्रतिरोध व्यक्तिगत स्वाभिमान की तुलना में अधिक सार्वजनिक तर्क की दिशा ग्रहण करता है। तृतीय अंक में जब विवाह के धार्मिक अर्थ पर प्रश्न उठता है, तब वह पुरोहित से पूछती है कि धर्म के बंधन स्त्री पर लागू किए जाते हैं तो संकट के समय उसकी रक्षा और प्रतिकार का प्रबंध कहाँ है। इस प्रश्न में धार्मिक व्यवस्था की वैधता उसके संरक्षणकारी उत्तरदायित्व से जोड़ी जाती है। यह केवल शास्त्र के विरुद्ध विद्रोह नहीं, उसके अपने घोषित नैतिक प्रयोजन की जाँच है (प्रसाद, 1933, तृतीय अंक)।

परिषद् के समक्ष मन्दाकिनी की सक्रियता निजी अनुभव को सार्वजनिक साक्ष्य में बदलती है। वह शक्ति के विरुद्ध आरोप को चरित्रहनन की भाषा के बजाय आचरण, न्याय और उत्तराधिकार की भाषा में रखती है। इससे नारी की पीड़ा केवल करुणा उपजाने वाला विषय नहीं रहती; वह सामूहिक निर्णय को दिशा देने वाला राजनीतिक तथ्य बनती है।

अनुराधा और पाण्डेय (2019) तथा चतुर्वेदी (2025) ने मन्दाकिनी सहित स्त्री-पात्रों की सक्रियता पर बल दिया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि नाटक में स्त्री-अधिकार का स्वर सामूहिक स्त्री-संवाद से निर्मित होता है। ध्रुवस्वामिनी का आत्मनिर्णय, मन्दाकिनी का सार्वजनिक विवेक और कोमा की दुखांत अनुभूति—ये तीनों मिलकर पितृसत्तात्मक संबंधों का अलग-अलग आलोचनात्मक मानचित्र प्रस्तुत करते हैं।

13. कोमा : पराजित पक्ष की स्त्री और विजेता-सत्ता की सीमा

द्वितीय अंक में कोमा का प्रसंग नाटक के नैतिक विस्तार को गहरा करता है। वह शकराज से भावनात्मक रूप से जुड़ी है, किंतु शकराज की विजय-लालसा और स्त्री के प्रति व्यवहार उसके विश्वास को आहत करते हैं। इस पात्र के माध्यम से पाठ दिखाता है कि पितृसत्तात्मक प्रभुत्व किसी एक राजवंश की समस्या नहीं है। विजेता बनने का दावा करने वाली सत्ता भी स्त्री की भावना और सम्मान को अपने हित के अधीन रखती है। कोमा की निराशा शकराज की राजनीतिक आकांक्षा की नैतिक विफलता को प्रकाशित करती है (प्रसाद, 1933, द्वितीय अंक)।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

कोमा की स्थिति ध्रुवस्वामिनी से अलग है। एक राजरानी है जिसे विनिमय की वस्तु बनाया जाता है; दूसरी पराजित सत्ता से जुड़ी स्त्री है जो अपने प्रेम-संबंध में छल और अपमान पहचानती है। दोनों के सामाजिक स्थान, राजकीय संबोधन और संभावित विकल्प भिन्न हैं। इस अंतर को मिटाकर 'समस्त नारी जाति की एक पीड़ा' कहना विश्लेषण को सरल बना देगा। प्रसाद का महत्वपूर्ण संकेत यह है कि स्त्री-पीड़ा के रूप अलग हैं, पर उनके पीछे शक्ति और असमानता की कुछ साझा प्रक्रियाएँ काम करती हैं।

तृतीय अंक में कोमा और ध्रुवस्वामिनी के बीच संवाद एक और कठिन प्रश्न उठाता है—क्या पीड़ित होना अपने आप किसी को दूसरे के दुःख के प्रति उदार बना देता है? ध्रुवस्वामिनी अपनी संकटग्रस्त मनःस्थिति में कोमा से कठोर व्यवहार करती है। यह प्रसंग नायिका को त्रुटिहीन नैतिक प्रतिमा बनाने से रोकता है। न्यायपूर्ण विचार के लिए अपने अनुभव के परे दूसरे के दुःख को पहचानना भी आवश्यक है।

कोमा का दुखांत परिणाम नाटक के विजयोत्सव की नैतिक सीमा उजागर करता है। युद्ध में राजनीतिक विजय सम्भव है, किन्तु प्रेम, विश्वास और जीवन की हानि को वह पूरी तरह वापस नहीं ला सकती। इस दृष्टि से कोमा राजकीय पुनर्स्थापना की कहानी के भीतर वह करुण स्मृति है जो पाठक को विजेता की भाषा से बाहर सोचने को विवश करती है। चतुर्वेदी (2025) के स्त्री-पात्र विश्लेषण तथा अनुराधा और पाण्डेय (2019) के पाठ से यह विमर्श आगे बढ़ता है।

14. विवाह-संस्था : विधि, सहमति और संरक्षण का अंतर

'ध्रुवस्वामिनी' में विवाह-संस्था की परीक्षा सबसे स्पष्ट रूप से तब होती है जब रानी को उसके पति द्वारा संकट से बचाने के बजाय शत्रु के समक्ष प्रस्तुत किया जाना तय होता है। विवाह की विधि औपचारिक रूप से संपन्न है, पर उसका नैतिक आशय—विश्वास, सहयोग और अधिकारों की रक्षा—अनुपस्थित है। इसीलिए नाटक विवाह की शास्त्रीयता और उसकी वास्तविक न्याय-संगति के बीच भेद स्थापित करता है।

ध्रुवस्वामिनी धर्म को पूरी तरह त्यागकर अपनी बात नहीं रखती। वह उस धार्मिक व्यवस्था से प्रश्न करती है जो स्त्री को आज्ञाकारिता में बाँधती है, लेकिन उसकी सुरक्षा के समय मौन हो जाती है। यहाँ न्याय की माँग परंपरा के भीतर से भी उठ सकती है; अधिकार का तर्क अनिवार्यतः अतीत को नकारने के बजाय उसकी पुनर्व्याख्या में भी प्रकट हो सकता है। इस जटिलता को समझे बिना नाटक को केवल धर्म-विरोधी या केवल रूढ़ि-समर्थक कहना उचित नहीं।

तृतीय अंक में पुरोहित को पुनर्विचार के लिए बाध्य करने वाली बात यह है कि यदि विवाह परस्पर विश्वास और संरक्षण का संबंध है तो भय, अपमान और जबरन परित्याग उसकी मूल शर्तों को नष्ट करते हैं। नाटक की धार्मिक बहस आधुनिक वैवाहिक विधान का सीधा प्रतिरूप नहीं है; वह अपने ऐतिहासिक-नाटकीय परिवेश में संबंध की नैतिक न्यायसंगति पर विचार करती है (प्रसाद, 1933, तृतीय अंक)।

यादव (2018) और सिंह (2023) ने विवाह-संबंध के पुनर्मूल्यांकन को स्त्री-मुक्ति के संदर्भ में देखा है। इस लेख का आग्रह है कि इस पुनर्मूल्यांकन में 'सहमति' को स्वतंत्र रूप से समझा जाए। जब किसी व्यक्ति के जीवन पर निर्णायक प्रभाव डालने वाला निर्णय उसकी बात सुने बिना किया जाता है, तब औपचारिक संबंध या पद उसे पर्याप्त नैतिक वैधता नहीं दे सकता।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

15. पुरोहित की धर्मशास्त्रीय पुनर्व्याख्या और न्याय का संस्थागत रूप

पुरोहित प्रारंभ में धार्मिक कर्मकांड और स्थापित व्यवस्था का प्रतिनिधि दिखाई देता है। वह समाधान के लिए शांति-विधि का प्रस्ताव करता है, किंतु ध्रुवस्वामिनी के प्रश्न उसे व्यवस्था के भीतर निहित अन्याय का सामना करने के लिए विवश करते हैं। यह परिवर्तन नाटक की प्रमुख वैचारिक उपलब्धियों में से है। धार्मिक प्राधिकार का उपयोग यहाँ केवल नियंत्रण के लिए नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्विचार के माध्यम के रूप में भी सम्भव होता है।

नायिका की आलोचना के बाद पुरोहित उस विवाह की वैधता को नए ढंग से परखता है जिसकी बाहरी विधि भले हुई हो, लेकिन जिसका नैतिक आधार समाप्त हो चुका है। परिषद् के सामने वह रामगुप्त के आचरण के संदर्भ में ध्रुवस्वामिनी पर उसके अधिकार का निषेध करता है। नाटक में उसका निर्णय स्त्री की दावेदारी को संस्थागत भाषा प्रदान करता है (प्रसाद, 1933, तृतीय अंक)।

यह परिवर्तन महत्वपूर्ण होने पर भी आलोचना से परे नहीं है। क्या नायिका की स्वतंत्रता तभी वैध मानी जाएगी जब पुरोहित उसे शास्त्र-सम्मत घोषित करे? इस प्रश्न में न्याय और प्राधिकार के बीच तनाव मौजूद है। नाटक एक ओर धार्मिक ग्रंथों की जड़ व्याख्या का प्रतिकार करता है; दूसरी ओर न्याय की अंतिम सार्वजनिक स्वीकृति अब भी पुरुष-प्रभुत्व वाली संस्थाओं से प्राप्त होती है। यही उसकी ऐतिहासिक परिस्थितियों से जुड़ी सीमा है।

फिर भी पुरोहित का चरित्र यह संकेत करता है कि परंपरा के भीतर न्याय-विरोधी व्यवहार को चुनौती देने की क्षमता भी हो सकती है। यहाँ रूढ़ि का स्थान विवेक लेता है और बाहरी विधि की जगह संबंध की नैतिक सार्थकता का परीक्षण होता है। इसे एक विकसित होती वैचारिक चेतना के रूप में पढ़ना अधिक युक्तिसंगत है, न कि आधुनिक अधिकारों की पूर्ण विधिक व्यवस्था के रूप में।

16. निजी अपमान से सार्वजनिक निर्णय तक : परिषद् और वैधता

तृतीय अंक का परिषद्-दृश्य इस शोधलेख के केंद्रीय प्रतिपाद्य को सबसे तीव्र रूप से स्थापित करता है। ध्रुवस्वामिनी के साथ किया गया अन्याय अब केवल निजी वैवाहिक विवाद नहीं रहता। वह राजवंश, उत्तराधिकार, शासकीय आचरण और सामूहिक न्याय के प्रश्नों को एक साथ सामने लाता है। राजसत्ता की वैधता निर्धारित करने वाले लोग स्वयं यह जाँचने लगते हैं कि जिसे वे सम्राट कहते आए हैं, क्या वह वास्तव में उस पद का नैतिक अधिकारी है (प्रसाद, 1933, तृतीय अंक)।

यहाँ सत्ता-विवेक की दो प्रतिस्पर्धी भाषाएँ दिखाई देती हैं। पहली भाषा पद, वंश, मंत्री-सम्मति और राजनीतिक सुविधा की है; दूसरी आचरण, न्याय, संरक्षण और सार्वजनिक जवाबदेही की। रामगुप्त तथा शिखरस्वामी पहली भाषा के सहारे अपना पक्ष संभालना चाहते हैं, जबकि मन्दाकिनी, चन्द्रगुप्त और पुरोहित दूसरी भाषा को प्रभावी बनाते हैं। नायिका के सम्मान का प्रश्न इस संघर्ष में गौण नहीं, बल्कि परीक्षण की कसौटी है।

नाटक यह संकेत करता है कि किसी शासन का अधिकार केवल अतीत की वैधता से स्थायी नहीं रहता; वर्तमान कर्मों के आधार पर उसकी पुनःपरीक्षा होती है। व्यक्तिगत नैतिक विफलता को राज्य के विधिक

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

संकट से जोड़ते समय प्रसाद नाटक की सार्वजनिक उपयोगिता बढ़ाते हैं। यही कारण है कि ऐतिहासिक प्रसंग आधुनिक पाठक के लिए भी सत्ता, निर्णय तथा जवाबदेही के प्रश्नों को जीवित रखता है।

किन्तु परिषद् का निर्णय भी एक सीमित सामाजिक ढाँचे में आता है। उसमें राजवंश और धार्मिक व्यवस्था की प्रभावी भूमिका बनी रहती है। स्त्री की स्वतन्त्र सार्वजनिक संस्था, सामान्य नागरिक समुदाय या समान अधिकार का व्यापक विधान नाटक में उपस्थित नहीं है। इस सीमा को स्वीकार करना उसे महत्वहीन नहीं बनाता; इससे उसके वैचारिक क्षितिज की ऐतिहासिक स्थिति स्पष्ट होती है।

17. भाषा, संवाद और मंच-रचना की आलोचनात्मक भूमिका

'ध्रुवस्वामिनी' की संवाद-योजना को केवल विचारों का मौखिक प्रस्तुतीकरण मानना अनुचित है। भाषिक स्वर पात्रों की स्थिति बदलने के साथ बदलता है। प्रथम अंक में ध्रुवस्वामिनी का विस्मय क्रमशः क्रोध और आत्मरक्षा के संकल्प में रूपांतरित होता है। रामगुप्त की वाणी में टालमटोल तथा आत्मरक्षा की प्रवृत्ति, शिखरस्वामी में तर्कपूर्ण दिखने वाला अवसरवाद और मन्दाकिनी में नैतिक दृढ़ता अलग-अलग शैलीगत प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार भाषा स्वयं सत्ता-संबंधों का नाटकीय साक्ष्य बनती है।

द्वितीय अंक में छद्मवेश, भ्रम, शक-दुर्ग का भय, संकेतों की अदला-बदली और आकस्मिक पहचान से उत्पन्न तनाव दर्शाता है कि प्रसाद विचारप्रधान विषय को दृश्य क्रिया में बदलने का प्रयास करते हैं। इस भाग में मात्र भाषण नहीं, शारीरिक जोखिम और मंचीय गति भी अर्थ का निर्माण करते हैं। ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त की सहभागिता तथा शकराज का विचलन सत्ता के स्थिर प्रतीकों को अस्थिर कर देते हैं (प्रसाद, 1933, द्वितीय अंक)।

तृतीय अंक का स्वर विवाद और सार्वजनिक सुनवाई के निकट पहुँच जाता है। यहाँ संबोधन, प्रश्न, आक्षेप और प्रत्युत्तर घटनाओं को निर्णय की दिशा देते हैं। 'महादेवी' जैसे संबोधन का लगातार प्रयोग और उससे नायिका की असहमति नाटक में शब्द और वास्तविकता के अंतर को उभारती है। भाषा की इस परत के बिना केवल कथानक-सार को पढ़ना पर्याप्त नहीं।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ने नाटक की कम अंकों वाली संरचना और मंचीय कसाव पर ध्यान आकर्षित किया है। इस तथ्य से एक और बात समझ में आती है कि प्रसाद के लिए नाटक मंच पर उभरने वाली सार्वजनिक बहस है, न कि केवल निजी आत्मस्वगत का विस्तार। विचार, दृश्य और चरित्र की परस्पर क्रिया से ही रचना का आधुनिक अर्थ निर्मित होता है (उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, तिथि अज्ञात)।

18. राष्ट्रीय चेतना, नैतिक राष्ट्रबोध और स्त्री के प्रश्न की केंद्रीयता

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों को राष्ट्रीय चेतना की साहित्यिक परंपरा में पढ़ना एक स्थापित आलोचनात्मक दिशा है। अतीत के वैभव की स्मृति औपनिवेशिक भारत में सांस्कृतिक आत्मविश्वास का साधन बन सकती थी। फिर भी 'ध्रुवस्वामिनी' की राष्ट्रीयता केवल विजयी सम्राट या शक्तिशाली साम्राज्य की प्रशस्ति तक सीमित नहीं है। रचना बार-बार पूछती है कि राज्य के 'गौरव' का वास्तविक आधार क्या है। यदि राजनीतिक प्रतिष्ठा की रक्षा स्त्री के अपमान से हो, तो वह गौरव अपने अर्थ से रिक्त हो जाता है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सिंह और जैन (2025) ने हिंदी ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय स्मृति और राजनीतिक स्वाभिमान की भूमिका पर बल दिया है। 'ध्रुवस्वामिनी' को इस परिप्रेक्ष्य में पढ़ते हुए यह जोड़ना जरूरी है कि राष्ट्रीय अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया में न्याय का प्रश्न निर्णायक है। नाटक में शत्रु पर विजय का नैतिक अर्थ तभी व्यापक बनता है जब उसके साथ सत्ता द्वारा स्त्री के वस्तुकरण का प्रतिकार जुड़ा हो।

कृति इस दृष्टि से राज्यभक्ति और न्यायबोध के बीच चयन करने को बाध्य नहीं करती; वह न्याय के बिना राज्यभक्ति के खोखलेपन को सामने लाती है। मन्दाकिनी की राज्य-चिंता, चन्द्रगुप्त की वीरता और ध्रुवस्वामिनी का आत्मसम्मान अलग-अलग होकर भी एक ऐसे सार्वजनिक मूल्य की ओर संकेत करते हैं जहाँ राज्य का सम्मान व्यक्तियों की मर्यादा की रक्षा से निर्मित होता है।

यह निष्कर्ष समकालीन समाज की घटनाओं का सीधा ऐतिहासिक वर्णन नहीं है, बल्कि साहित्यिक कल्पना से प्राप्त आलोचनात्मक संभावना है। नाटक में जिस वैचारिक संघर्ष को रूपायित किया गया है, उसके आधार पर पाठक राष्ट्र, परिवार और धर्म के नाम पर दिए जाने वाले आदेशों की नैतिक परीक्षा करना सीख सकता है।

19. नारी-मुक्ति के प्रश्न पर आलोचनात्मक आपत्तियाँ और पाठ की सीमाएँ

किसी रचना की प्रगतिशील संभावना को स्वीकार करना उसकी अंतर्निहित सीमाओं को अनदेखा करना नहीं है। 'ध्रुवस्वामिनी' में नायिका सक्रिय, संवेदनशील और निर्णायक है; फिर भी कथानक के अंत में उसके अधिकार को औपचारिक मान्यता देने की जिम्मेदारी मुख्यतः पुरोहित तथा परिषद् पर निर्भर रहती है। यहाँ एक आलोचनात्मक प्रश्न उभरता है: क्या स्त्री की स्वायत्तता स्वयं पर्याप्त नैतिक आधार है, या उसे अभी भी परंपरागत प्राधिकार की स्वीकृति चाहिए?

दूसरी सीमा वीरता के पारंपरिक नाटकीय प्रतिमान से संबंधित है। चन्द्रगुप्त की साहसपूर्ण भूमिका महत्वपूर्ण है, पर उसके कारण ध्रुवस्वामिनी की स्वतन्त्र क्रिया को केवल बचाई जाने वाली स्त्री के अनुभव में सीमित कर देना अनुचित होगा। नाटक में उसकी असहमति, आत्मरक्षा का संकल्प और सम्मानसूचक उपाधि से अस्वीकार—इन सबका अपना स्वतंत्र वैचारिक महत्व है। चन्द्रगुप्त की विजय को इन घटनाओं पर आरोपित कर देने से स्त्री की अभिकर्तृता का अर्थ कम हो जाएगा।

तीसरी सीमा कोमा की दुखांत स्थिति में निहित है। नाटक के अंतिम राजनीतिक समाधान से सभी स्त्रियों की पीड़ा नहीं मिटती। राजकीय विजय, विवाह-संबंध का पुनर्गठन और नैतिक निर्णय होने के बावजूद युद्ध के दुष्परिणाम बने रहते हैं। कोमा का प्रसंग याद दिलाता है कि स्त्री-अधिकार का विमर्श केवल सफल नायिका के अनुभव से नहीं किया जा सकता।

चौथी सावधानी ऐतिहासिक व्याख्या के संबंध में है। नाटक के आधुनिक अर्थ को स्वीकार करते हुए इसे आज की विधिक समानता, प्रतिनिधिक लोकतंत्र अथवा विस्तृत नागरिक-अधिकारों की भाषा में पूर्णतः सिद्ध पाठ घोषित करना कालविपर्यय होगा। प्रसाद ऐतिहासिक कथावृत्त और अपने समय की वैचारिक चिन्ताओं के मध्य सर्जनात्मक संवाद रचते हैं। इस संवाद की सीमाएँ उसकी साहित्यिक शक्ति को समझने में बाधा नहीं, बल्कि आवश्यक आलोचनात्मक संदर्भ हैं।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

20. प्रमुख निष्कर्ष एवं मौलिक प्रतिपादन

प्रथम निष्कर्ष यह है कि नाटक में ध्रुवस्वामिनी का प्रश्न राजनीतिक वैधता का परीक्षण बनता है। सम्राट की सत्ता, जब उसके संरक्षणाधीन व्यक्ति के सम्मान की रक्षा नहीं करती, तब उसकी नैतिक विश्वसनीयता नष्ट होती है। इस निष्कर्ष का आधार रामगुप्त का संधि-संबंधी निर्णय और तृतीय अंक की सार्वजनिक बहस है।

द्वितीय, स्त्री के देहगत वस्तुकरण का विरोध केवल निजी आत्मरक्षा नहीं, सत्ता के औचित्य की आलोचना है। शिखरस्वामी की व्यावहारिक संधि-नीति स्त्री को निर्णय से बाहर रखती है; ध्रुवस्वामिनी की प्रतिक्रिया उसके भीतर छिपे अन्याय को दृश्यमान बनाती है। इसी अर्थ में नारी-अस्मिता राजनीति से अलग सीमांत विषय नहीं, राजनीतिक निर्णय की केंद्रीय कसौटी है।

तृतीय, नाटक में धार्मिक प्राधिकार का अर्थ एकरेखीय नहीं है। कर्मकांड की निष्क्रियता को चुनौती देते हुए मन्दाकिनी और ध्रुवस्वामिनी ऐसी धर्म-व्याख्या की माँग करती हैं जो विवाहित स्त्री की वास्तविक गरिमा और संरक्षण से जुड़ी हो। पुरोहित का परिवर्तन परंपरा के भीतर न्याय के लिए सम्भावना खोलता है, किंतु इस संभावना की सीमा भी बनी रहती है क्योंकि स्त्री के अधिकार को संस्थागत स्वीकृति से गुजरना पड़ता है।

चतुर्थ, स्त्री-अनुभव का बहुवचन इस नाटक की विशिष्ट उपलब्धि है। ध्रुवस्वामिनी राजकीय विनिमय का विरोध करती है, मन्दाकिनी अन्याय को सार्वजनिक प्रश्न में बदलती है और कोमा विजेता की सत्ता से आहत भावनात्मक अस्तित्व को सामने लाती है। इन तीनों को साथ पढ़ने पर नाटक की स्त्री-चेतना अधिक जटिल और व्यापक प्रतीत होती है।

पंचम, ऐतिहासिकता नाटक में राष्ट्रगौरव की सरल स्थापना नहीं, उसके नैतिक पुनर्मूल्यांकन का साधन है। राज्य का गौरव मनुष्य की मर्यादा के विरुद्ध खड़ा हो तो प्रसाद का नाटक उसी गौरव की शर्तों पर सवाल उठाता है। इस प्रकार इतिहासबोध, राजसत्ता और स्त्री-अधिकार की त्रयी 'ध्रुवस्वामिनी' के आलोचनात्मक अर्थ को एक साथ पढ़ने की उपयोगी पद्धति प्रदान करती है।

21. उपसंहार

जयशंकर प्रसाद का 'ध्रुवस्वामिनी' अपने ऐतिहासिक कथानक के कारण महत्वपूर्ण अवश्य है, लेकिन उसकी स्थायी आलोचनात्मक ऊर्जा सत्ता और नैतिकता के बीच स्थापित द्वंद्व में निहित है। नाटक का आरम्भ एक ऐसी व्यवस्था से होता है जिसमें रानी की उपाधि तो सुरक्षित है, किंतु उसकी सहमति और गरिमा सुरक्षित नहीं। संधि का प्रस्ताव उसे राज्य की वस्तु में बदल देता है; प्रतिरोध का संकल्प उसे अपनी नियति पर बोलने वाली व्यक्तित्व-संपन्न स्त्री के रूप में स्थापित करता है।

ध्रुवस्वामिनी का संघर्ष कोई एकांत नैतिक घोषणा बनकर नहीं रह जाता। मन्दाकिनी के सार्वजनिक तर्क, कोमा की त्रासदी, चन्द्रगुप्त के साहस तथा पुरोहित के शास्त्रीय पुनर्विचार से गुजरते हुए वह राजनीतिक निर्णय के केंद्र तक पहुँचता है। इस प्रक्रिया में राजसत्ता की वैधता का आधार केवल वंश या औपचारिक अधिकार नहीं रह जाता; उसकी समीक्षा आचरण और न्याय के स्तर पर होती है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

इस नाटक की प्रगतिशीलता का मूल्यांकन करते समय उसके अंतर्विरोधों को भी देखना आवश्यक है। स्त्री का स्वाधीन स्वर उभरता है, फिर भी उसके अधिकार की सामाजिक स्वीकृति परंपरागत संस्थाओं और वीर-पुरुष की निर्णायक क्रिया के सहारे आती है। यही कारण है कि कृति को न तो पूर्ण मुक्ति का तैयार विधान कहना उचित है, न केवल पारंपरिक आदर्शवाद की रचना मानकर छोड़ देना। वह भारतीय आधुनिकता के निर्माणकाल में न्याय, इतिहास और स्त्री के प्रश्नों से जूझती हुई जटिल साहित्यिक कृति है।

इस अध्ययन का समेकित निष्कर्ष है कि 'ध्रुवस्वामिनी' में स्त्री-अस्मिता राजनीतिक न्याय का नैतिक मापदंड बनती है। जिस व्यवस्था में मनुष्य की गरिमा सुरक्षित नहीं, वहाँ शक्ति और गौरव की घोषणाएँ पर्याप्त नहीं हो सकतीं। प्रसाद के नाटक का आधुनिक महत्त्व इस बात में है कि वह सांस्कृतिक परंपरा के भीतर से ही उसके अधिकार-विरोधी प्रयोगों को चुनौती देने और मानवीय प्रतिष्ठा को सार्वजनिक निर्णय की आधारभूमि बनाने का आग्रह करता है।

22. अध्ययन की सीमाएँ तथा भावी शोध की दिशाएँ

यह लेख मूलतः पाठ-विश्लेषण पर आधारित है; इसमें मंचन-परंपराओं, निर्देशक-व्याख्याओं, भिन्न पाठ-संपादनों या दर्शक-प्रतिक्रियाओं का अनुभवजन्य तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया गया है। उपलब्ध आलोचनात्मक लेखों का चयन विषय-प्रासंगिकता और स्रोत-पुष्टि के आधार पर हुआ है, इसलिए संपूर्ण प्रकाशित सामग्री को समाहित करने का दावा नहीं किया जा सकता।

भावी शोध में 'ध्रुवस्वामिनी' की विभिन्न रंगमंचीय प्रस्तुतियों के माध्यम से स्त्री-पात्रों की अभिव्यक्ति, शारीरिक अभिनय, मौन और प्रतिरोध की दृश्य-भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रसाद के अन्य ऐतिहासिक नाटकों में राजधर्म, स्त्री और राज्य-मर्यादा के प्रश्नों की तुलना तथा 'ध्रुवस्वामिनी' के भिन्न मुद्रित संस्करणों का पाठांतर-अनुशीलन मूल्यवान होगा।

संदर्भ सूची

1. प्रसाद, जयशंकर. (1933). ध्रुवस्वामिनी : प्रथम अंक. प्रसाद वाङ्मय, द्वितीय खण्ड [मूल नाटक का निःशुल्क पाठ]. विकिस्रोत. ऑनलाइन स्रोत देखें
2. प्रसाद, जयशंकर. (1933). ध्रुवस्वामिनी : द्वितीय अंक. प्रसाद वाङ्मय, द्वितीय खण्ड [मूल नाटक का निःशुल्क पाठ]. विकिस्रोत. ऑनलाइन स्रोत देखें
3. प्रसाद, जयशंकर. (1933). ध्रुवस्वामिनी : तृतीय अंक. प्रसाद वाङ्मय, द्वितीय खण्ड [मूल नाटक का निःशुल्क पाठ]. विकिस्रोत. ऑनलाइन स्रोत देखें
4. प्रसाद, जयशंकर. (1933). ध्रुवस्वामिनी : भूमिका एवं प्रथम अंक. हिंदी समय. ऑनलाइन स्रोत देखें
5. पालीवाल, रीतारानी. (2018). इकाई-27 : 'ध्रुवस्वामिनी' (जयशंकर प्रसाद) : वाचन और व्याख्या. खंड-5 हिंदी नाटक. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई-ज्ञानकोश. ऑनलाइन स्रोत देखें
6. उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय. (तिथि अज्ञात). नाटक एवं कथेतर साहित्य : 'ध्रुवस्वामिनी' पर अध्ययन-इकाई. पाठ्यसामग्री, बीएएचएल-202. ऑनलाइन स्रोत देखें

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

7. यादव, सुरंगमा. (2018, मार्च). 'ध्रुवस्वामिनी' में नारी जागरण की चेतना. हस्ताक्षर. ऑनलाइन स्रोत देखें
8. मीनाक्षी. (2019). जयशंकर प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में स्त्री-सशक्तिकरण की भावना. रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी, 4(3). ऑनलाइन स्रोत देखें
9. अनुराधा, एवं पाण्डेय, दर्शन. (2019, 4 अगस्त). जयशंकर प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में नारी चेतना. अपनी माटी. ऑनलाइन स्रोत देखें
10. शर्मा, अर्चना. (2021). स्त्री विमर्श के संदर्भ में प्रसाद कृत 'ध्रुवस्वामिनी'. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिंदी रिसर्च, 7(5), 122–123. ऑनलाइन स्रोत देखें
11. सिंह, कुलवंत. (2023, 31 दिसंबर). ध्रुवस्वामिनी : स्त्री अस्मिता का प्रश्न. अपनी माटी. ऑनलाइन स्रोत देखें
12. चतुर्वेदी, संतोष कुमार. (2025). ध्रुवस्वामिनी नाटक में नारी चरित्र. रिसर्च हब इंटरनेशनल मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, 12(4), 203–205. ऑनलाइन स्रोत देखें
13. सिंह, दीपक, एवं जैन, गणेशलाल. (2025). हिन्दी ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय चेतना का विकास : जयशंकर प्रसाद, रामकुमार वर्मा और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च एंड मल्टीडिसिप्लिनरी ट्रेंड्स, 2(4), 522–532. ऑनलाइन स्रोत देखें